रजिस्ट्री सं. डी. एल.-33004/98

REGD. NO. D. L.-33004/98

भारत का राजपत्र
The Gazette of India

असाधारण
EXTRAORDINARY

भाग III—खण्ड 4
PART III—Section 4

प्राधिकार से प्रकाशित
PUBLISHED BY AUTHORITY

सं० 42] नई दिल्ली, बृहस्पतिवार, अगस्त 13, 1998/श्रावण 22, 1920
No. 42] NEW DELHI, THURSDAY, AUGUST 13, 1998/SRAVANA 22, 1920

महापत्तन प्रशुल्क प्राधिकरण

अधिसूचना

नई दिल्ली, 13 अगस्त, 1998

सं. टी ए एम पी/5/97-एम बी पी टी.—महापत्तन न्यास अधिनियम, 1963 (1963 का 38) की धारा 48 और 50 द्वारा प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करते हुए महापत्तन प्रशुल्क प्राधिकरण मैसर्स इस्पात इंडस्ट्रीज लि० के लौह अयस्क कार्गो की ढुलाई के संबंध में यानान्तरण पर शुल्क लगाने के बारे में मैसर्स इस्पात इंडस्ट्रीज लि० द्वारा मुंबई पत्तन न्यास के विरुद्ध दिए गए अभ्यावेदन से संबंधित मामले में मुंबई पत्तन न्यास द्वारा उठाई गई प्रारम्भिक आपत्तियों के संबंध में एतद्द्वारा एक आदेश जारी करता है।

अनुसूची

मैसर्स इस्पात इंडस्ट्रीज लि० .....आवेदक

बनाम

मुंबई पत्तन न्यास (एम०बी०पी०टी०) .....गैर-आवेदक

आदेश

(27 जुलाई, 1998 को पारित)

यह मामला मुंबई पत्तन न्यास के समुद्री क्षेत्र में पत्तन अवसंरचना के किसी भाग का उपयोग किए बगैर सीधे मार्ग से जाने वाले आवेदक के बजरों के संबंध में दी जाने वाली काल्पनिक सेवाओं के बहाने गैर आवेदक द्वारा मनमाने प्रभार लगाने का आरोप लगाते हुए आवेदक द्वारा किए गए एक आवेदन से उत्पन्न हुआ है।

2. इस मामले की 3 जुलाई, 98 को दिल्ली में सुनवाई की गई।

3. कार्यवाई शुरू होने से पहले आवेदक ने एक आवेदन प्रस्तुत किया जिसमें विशेषत: याचना (क) को आशोधित करने वाले उनके आवेदन को संशोधित करने की प्रार्थना की गई थी। गैर आवेदक ने उसमें बताए गए तथ्यों का स्वीकार किए बगैर संशोधन की याचना को अनुमति देने के लिए कोई आपत्ति नहीं उठाई। तदनुसार याचना को अनुमति दे दी गई और संशोधन के आवेदन को रिकार्ड किया गया। आवेदक को राहत खंड आशोधित करके संशोधित रूप में आवेदन करने के लिए कहा गया ताकि गैर आवेदक संशोधित आवेदन का इस प्राधिकरण द्वारा अधिनिर्णय लिए जाने से पहले ब्यौरेवार उत्तर दे सके।

4. सुनवाई के दौरान मामले के गुणावगुणों की जाँच करने से पहले मुंबई पत्तन न्यास ने उस तरीके के बारे में कुछ प्रारम्भिक आपत्तियां उठाई जिस तरीके से मामले को चलाया जा रहा था और उन्होंने आवेदक की याचनाओं के स्वरूप के बारे में भी आपत्ति उठाई। सुनवाई के समय लिखित(और अनुपूरक मौखिक) निवेदनों में उठाई प्रारम्भिक आपत्तियां मुख्यत: निम्न प्रकार से हैं:-

(क) प्राधिकरण के रूप में केवल सदस्यों का सामूहिक निकाय ही पूर्ण निर्णय ले सकता है।

(ख) पूरा प्राधिकरण सुनवाई के दौरान उपस्थित होगा। अध्यक्ष को अकेले सुनवाई करने की छूट नहीं है।

(ग) प्राधिकरण को न्यासी बोर्ड को निर्देश देने की शक्ति नहीं है। ऐसे निर्देश केवल सरकार ही दे सकती है।

(घ) प्राधिकरण द्वारा 'छूट' की याचना पर कार्यवाही नहीं की जा सकती क्योंकि संविधि इसे छूट देने की शक्ति नहीं देती।

(ङ) याचना-ख में "संकल्प का उल्लंघन" का आग्रह उचित रूप से न्यासी बोर्ड को संबोधित किया जाना चाहिए न कि प्राधिकरण को।

5. आवेदक ने मुंबई पत्तन न्यास की ओर से उठाई गई (प्रारंभिक) आपत्तियों का उत्तर देते हुए 9 जुलाई 98 को लिखित निवेदन किए। इन्हें

रिकार्ड किया गया है और इन पर विधिवत् विचार किया गया है।

6. यह निर्धारित होने पर हम इन आपत्तियों पर क्रमानुसार भिन्न कार्यवाही करते हैं:-

(क) प्राधिकरण के रूप में केवल सदस्यों का सामूहिक निकाय ही पूर्ण निर्णय ले सकता है।

हम इस बात से निश्चित नहीं है कि क्या यह आपत्ति बिल्कुल भी पुष्टि करने योग्य है। संविधि द्वारा प्राधिकरण के लिए परिकल्पित वस्तु विन्यास में इसके द्वारा पर्याप्त मात्रा में विवेक का प्रयोग करना शामिल है। परन्तु इसलिए तार्किक रूप से यह सुनिश्चित है कि पक्षकारों के बीच किसी विवाद का निर्धारण करने से पहले प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का अनुसरण किया जाता है। इससे अध्यक्ष अथवा किसी सदस्य अथवा सदस्यों को निर्णय करने की शक्ति भी प्रत्यायोजित हो सकती है।

चाहे जैसा भी हो व्यावहारिक रूप में प्राधिकरण द्वारा अपनाई गई प्रणाली वस्तुत: वही है जिसका समर्थन मुंबई पत्तन न्यास के विद्वान काउंसल ने किया है। सभी निर्णय सदस्यों के सामूहिक निकाय द्वारा लिए जाते हैं। अध्यक्ष द्वारा निर्णयों को केवल अधिप्रमाणित किया जाता है, परन्तु यह कार्य पूर्णरूपेण संविधि के विशिष्ट उपबंध के भीतर किया जाता है।

इस स्थिति में इस आपत्ति पर और अधिक विचार करने की आवश्यकता नहीं है। तदनुसार इसे इस मामले के संबंध में असंगत मानकर खारिज किया जाता है।

(ख) पूरा प्राधिकरण सुनवाई के दौरान उपस्थिति रहेगा। अध्यक्ष को अकेले सुनवाई करने की छूट नहीं है।

(i) जैसा कि आवेदक के विद्वान काउंसल द्वारा तर्क दिया गया है, इस आपत्ति की वैधता की जाँच करने के लिए यह आवश्यक है कि प्राधिकरण से संबंधित संविधि के उपबंधों के अनुसार इसके विन्यास पर विचार किया जाए;

(ii) जैसा कि हमने पहले कहा है, संविधि द्वारा प्राधिकरण के लिए परिकल्पित वस्तु विन्यास में इसके द्वारा पर्याप्त रूप में विवेक का प्रयोग किया जाना शामिल है (धारा 47-ड)। इसलिए एक अर्धन्यायिक निकाय के रूप में इसके स्वरूप के अनुरूप यह अवश्य ही सुनिश्चित किया जाना है कि पक्षकारों के बीच किसी विवाद का निर्धारण करने से पहले प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का अनुसरण किया जाए, इसे सख्त न्यायिक प्रक्रियाओं की कठोरताओं अथवा कड़ेपन द्वारा प्रतिबंधित करने की आवश्यकता नहीं हैं इस प्राधिकरण को किसी न्यायालय से भिन्न होने की परिकल्पना की गई है जो धारा 47-च के उपबंधों से स्पष्ट है। इसमें यह प्रावधान है कि प्राधिकरण के सभी आदेश व निर्णय अध्यक्ष अथवा इस संबंध में प्राधिकरण द्वारा प्राधिकृत किसी अन्य सदस्य के हस्ताक्षर द्वारा अधिप्रमाणित किए जाएंगे। इसके विपरीत न्यायालयों में उनके निर्णय और आदेश पर सभी न्यायाधीशों/सदस्यों द्वारा हस्ताक्षर किए जाने अपेक्षित हैं।

(ग) अन्य आकर्षक बात यह है कि प्राधिकरण के तीन सदस्यों में से दो अंशकालिक सदस्य हैं। सभी कार्यवाहियों में उनकी सहभागिता को विनिश्चित करना व्यावहारिक प्रस्ताव नहीं होगा। इस स्थिति का मूल्यांकन यह है कि प्राधिकरण ने कार्यवाहियाँ पूरी करने और समस्त एकत्रित सामग्री पर संयुक्त रूप से विचार करके सामूहिक निर्णय के लिए मामले तैयार करने के लिए अध्यक्ष को प्राधिकृत किया है। यह स्वीकार करना समीचीन है कि प्राधिकरण ने संयुक्त सुनवाई करने के लिए अध्यक्ष को विशेष रूप से प्राधिकृत किया है क्योंकि अंशकालिक सदस्यों के लिए सभी स्तरों पर मामलों की कार्यवाहियों में उपस्थित रहना और संयुक्त सुनवाइयों में भाग लेना भी व्यावहारिक नहीं है। इस स्थिति में प्रश्नगत मुद्दे के प्रयोजनार्थ अलग से लचीली संविधि तैयार करनी होगी।

(ध) यह तर्क दिया जा सकता है कि यदि ऐसा भी हो तो प्राधिकरण के गठन को ठीक करना होगा। परन्तु ऐसा तर्क ऐसी (कथित) कमियों को दूर करने के लिए संविधि [धारा 47-छ (क) और (ग)] में विशिष्ट प्रावधानों को ध्यान में रखते हुए सारहीन होगा।

(iii) इससे उभरने वाली स्थिति यह है कि यह प्राधिकरण जिससे पत्तन न्यासों/निजी प्रचालकों और (उनके) प्रयोक्ताओं के बीच प्राचीर के रूप में कार्य करने की आशा है, को दोनों पक्षकारों को अपने हितों को प्रस्तुत करने के लिए पर्याप्त अवसर देने का सुनिश्चित करना चाहिए। कुछ मामलों में अधिकतम प्रयोक्ताओं की अधिकतम भागीदारी करने के लिए पत्तन स्तरीय (संयुक्त) सुनवाई करना भी आवश्यक हो सकता है परन्तु ऐसी सुनवाइयों का प्रयोजन संविधि विन्यास के उक्त विश्लेषण को ध्यान में रखते हुए प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों के अनुपालन की सुरक्षा करना है, उनकी वैधता पर किसी प्रक्रिया के अधिनियमन के विसंगत होने के अधार पर प्रश्न नहीं उठाया जा सकता उल्लेखनीय है कि आवेदक के विद्वान काउंसल द्वारा दिए गए पर्याप्त बल के अनुसार संविधि में कोई विशिष्ट प्रतिकूल उपबंध न होने से किसी ऐसे विचार को अवश्य बल मिलना चाहिए। अन्य शब्दों में रुपरेखाओं के गुणावगुण यदि संविधि के सख्त निर्धारणों द्वारा सुरक्षित नहीं रहते हैं तो अवस्थापना के मूल उद्देश्य से अवश्य रक्षित रहने चाहिए।

(iv) यदि इस आपत्ति को स्वीकार कर लिया जाए तो परिणाम सभी की सुविधा के अनुकूल संयुक्त सुनवाइयों को विलम्बित करके एकत्र करना होगा अथवा उन्हें पूर्णरुपेण समाप्त करने की संभावना रहेगी। ऐसी घटना का प्रभाव दोनों पक्षकारों को अपने हित प्रस्तुत करने के लिए पर्याप्त अवसर सुनिश्चित करने में प्राकृतिक न्याय के सिद्धांत को हानि पहुँचेगी।

(v) अंतत: स्वीकृत परम्परा महत्व को भी विधिवत् रुप से ध्यान में रखना है। इस प्राधिकरण द्वारा जिस प्रकार से अभी तक बिना किसी आपत्ति के अपनी शक्तियों का प्रयोग किया गया है, को भी मानना होगा। यद्यपि, मुंबई पत्तन न्यास के कांउसल ने तर्क दिया है कि प्राधिकरण की डेढ़ वर्ष की मौजूदगी इस संबंध में निर्णय निकालने के लिए पर्याप्त लम्बी अवधि नहीं है। हमें इस अनुभूति के साथ सहमत होना कठिन मालूम होता है। 18 महीने, परंपरागत प्रथा के रूप में कोई प्रथा तैयार होने के लिए पर्याप्त रूप से लम्बा समय नहीं हो सकता परन्तु यह निश्चित रूप से प्रक्रियाओं की वैधता स्थापित करने के लिए अपर्याप्त नहीं है।

(vi) उपर्युक्त कारणोंवश फलत: यह (प्रारंभिक) आपत्ति भ्रांतिपूर्ण और निरर्थक मालूम होती है।

(ग) प्राधिकरण को न्यासी बोर्ड को निर्देश देने की शक्ति नहीं है। ऐसे निर्देश केवल सरकार ही दे सकती है।

तर्क के समय यह आपत्ति संशोधित निवेदनों के संदर्भ में प्रस्तुत की गई थी। इस पर इन तर्कों द्वारा भी जोर दिया गया है कि यह प्राधिकरण न्यासी बोर्ड के लिए एक एपजी प्राधिकरण है, जैसी कि याचना की गई है।

ऐसा कोई निर्देश यदि जारी भी किया गया हो तो वह स्वयं प्राधिकरण के लिए निर्देश होगा। ऐसा निर्देश केवल अयुक्तियुक्त ही हो सकता है। प्राधिकरण द्वारा को यह स्थित भी स्वीकार करनी होगी कि न्यासी बोर्ड के साथ-साथ यह संगामी श्रृंखला पर है। और इसे अपीलीय स्वरूप की शक्तियां प्राप्त नहीं है।

वस्तुत: इस आपत्ति का कोई विशिष्ट उत्तर नहीं है। आवेदक के प्रतितर्क से यह मानने के लिए एक भिन्न प्रक्षेपपथ अवरुद्ध हो जाता है कि यह प्राधिकरण कोई न्यायालय या न्यायाधिकरण नहीं है और इसलिए निवेदन करने से संबंधित नियमों को सख्ती से लागू नहीं किया जा सकता, तथ्य यही है कि याचना की भाषा संतोषजन न होने से यह तथ्य बिल्कुल भी समाप्त नहीं हो सकता कि याचिका का सार पूर्णत: इस प्राधिकरण की शक्तियों और कार्य क्षेत्र के भीतर है।

इस मुद्दे पर वैध स्थिति के बारे में कोई विवाद नहीं हो सकता। न्यासी बोर्ड के कार्यक्षेत्र पर प्राधिकरण का कोई नियंत्रण नहीं है। न्यासी बोर्ड के कार्य और शक्तियां प्रशासनिक स्वरूप के हैं और यह प्राधिकरण ऐसे प्रशासनिक कार्यों से संबंधित नहीं है। यह हमारा सुनिश्चित मत है कि यह प्राधिकरण केवल अर्धन्यायिक कार्यों से संबंधित होगा जिन्हें संशोधित संविधि द्वारा न्यासी बोर्ड से लेकर इसमें निहित कर दिया गया है। हमारे विचार से विधायिका का यह सुविचारित कार्य था कि प्रशासनिक और अर्धन्यायिक शक्तियों/कार्यों के बीच अंतर किया जाए ताकि प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का उल्लंघन होने के कार्य का सुनिश्चय किया जा सके।

इस पृष्ठभूमि में निर्विवादित रूप से इस प्राधिकरण के लिए न्यासी बोर्ड को कोई निदेश जारी करने की कोई गुंजाइश नहीं है।

(घ) प्राधिकरण द्वारा "छूट" की याचना पर कार्यवाही नहीं की जा सकती क्योंकि संविधि इसे छूट देने की शक्ति नहीं देती।

यहां पुन: आपत्ति का वस्तुत: कोई विशिष्ट उत्तर नहीं है। आवेदक ने इस कथन का सहारा लिया है कि यदि ऐसी प्रारंभिक आपत्तियां उठाने की अनुमति दी जाती है तो अधिनियम का उद्देश्य पूर्णत: विफल हो जाएगा।

इस मुद्दे के संबंध में भी कानूनी स्थिति के बारे में कोई विवाद नहीं हो सकता। यह हमारा निश्चित मत है कि छूट देने की शक्ति का प्रयोग किसी ऐसे अर्ध न्यायी प्राधिकरण द्वारा कभी नहीं किया जाता जिसका मुख्य कार्य दो पक्षकारों के अधिकारों और विवादों का निर्णय करना हो। छूट देने की शक्ति किसी ऐसे प्रशासनिक निकाए के पास होती है जिसे अलग-अलग मामलों अथवा मामलों की श्रेणी की विशेष परिस्थितियों के आधार पर अपने विवेक का प्रयोग करना होता है।

इस दृष्टिकोण से सर्वसम्मति यह है कि इस प्राधिकरण के लिए कोई छूट देने की कोई गुंजाइश नहीं होगी। इसलिए इस संबंध में हमारे द्वारा किसी याचना पर कार्रवाई करने से कोई प्रयोजन सिद्ध नहीं होगा। ऐसा होने पर यह (प्रारंभिक) आपत्ति समर्थन योग्य है।

(ङ) याचना-ख में "संकल्प का उल्लंघन" का आग्रह उचित रूप से न्यासी बोर्ड को संबंधित किया जाना चाहिए था न कि प्राधिकरण को।

इस आपत्ति के संबंध में इस तर्क पर भी जोर दिया गया है कि इस याचना में दरों के बारे में कोई शिकायत नहीं की गई है। संदर्भ एक संकल्प का अनुपालन न करने से संबंधित है, "संकल्प के उल्लंघन" के बारे में बात करके आवेदक ने वास्तव में संकल्प की वैधता को स्वीकार किया है, तब इस प्राधिकरण के कार्यक्षेत्र का आश्रय लिया गया, उन्हें वापस न्यासी बोर्ड जो इस मामले पर कार्यवाही करने के लिए सही मंच है, के पास जाना चाहिए।

पुनरपि, चिन्तनोंपरात इस आपत्ति का कोई विशिष्ट उत्तर नहीं है। आवेदक की टिप्पणियां है कि याचिका का सार और तत्व इसकी याचनाओं और अभिवचनों पर प्रभावी रहेगा। याचिका का तत्व पूर्णत: शुल्कों से संबंधित होने के कारण यह तर्क दिया गया है कि अभिवचनों की भावा में दोष होने के कारण इसे इसको अनुरक्षित रखने के गुणावगुणों से वंचित नहीं कर सकता।

सार और तत्व से संबंधित वाक्चातुर्य के होते भी आपत्ति के महत्व को नकारा नहीं जा सकता। किसी संकल्प का पत्तन न्यास प्राधिकारियों द्वारा अनुपालन न करने की किसी शिकायत को स्वाभाविक रूप से न्यासी बोर्ड को संबोधित किया जाना है। यह प्राधिकरण न्यासी बोर्ड के संकल्पों का अनुपालन कराने के लिए कठिनता से ही कुछ कर सकता है। परिणामत: इस (प्रारंभिक) आपत्ति को मान्यता देनी होगी।

7.1 विशिष्ट (प्रारंभिक) आपत्तियों का निपटान करने के पश्चात् भी हमारे लिए कुछ प्रासंगिक मुद्दों पर कार्यवाही करना शेष रह जाता है। एक ऐसा मुद्दा दरों के पूर्वव्यापी संशोधन के बारे में है। मुंबई पत्तन न्यास के विद्वान काउंसल ने अपने तर्कों को पुष्ट करने के लिए विभिन्न संदर्भ का उल्लेख किया है :—

(i) आई आर 1977 एस सी 552

(ii) वाल्यूम 199 आई टी आर 530

(iii) 1968 एस सी 1336

(iv) 1988 वाल्यूम 4 एस सी केसेज 59

(v) 356 यू.एस. 309-2 लाइयर्स एडिशन 788

7.2 इन सभी संदर्भ का निष्कर्ष इस प्रकार है :—

(i) संदर्भाधीन मुद्दे "प्रक्रियात्मक" अथवा "सूचक" नहीं बल्कि "स्थाई" हैं। इसलिय दरों को पूर्वव्यापी प्रभाव से निष्प्रभावी नहीं किया जा सकता।

(ii) किसी पूर्वप्रभावी हस्तक्षेप से वित्तीय अव्यवस्थता उत्पन्न हो जाएगी।

(iii) गणनाओं के संबंध में विशेषज्ञ असहमत हो सकते हैं। परन्तु (विशेषज्ञ) मत को पूर्वप्रभाव से कैसे अध्यारोपित किया जा सकता है ?

(vi) प्राधिकरण ऐसे (विशेषज्ञ) मतों कें अध्यारोपित को उचित ठहराने के लिए विगत की परिस्थितियां पुन: उत्पन्न नहीं कर सकेगा।

7.3 इन संदर्भों के ब्यौरों की जांच करने की आवश्यकता नहीं है। हमारा सुस्थापित मत है कि पहले से स्वीकृत दरें तब तक वैध रहेंगी जब तक उन्हें इस प्राधिकरण द्वारा परिवर्तित नहीं कर दिया जाता। जैसे ही नई दरें आदि विनिर्धारित और अधिसूचित कर दी जाएंगी, वे पुरानी दरों का स्थान ले लेंगी। अन्यथा भी आवेदक ने असंदिग्ध रूप से स्वीकार किया है

कि "इस्पात पूर्वव्यापी प्रभाव से कोई राहत प्रदान करने की मांग नहीं कर रहा है।" ऐसा होने से इस मुद्दे पर आगे विचार करने अथवा विभिन्न संदर्भों के ब्यौरों के जांच करने की आवश्यकता नहीं है।

7.4 परन्तु एक रोचक बात है। मुंबई पत्तन के विद्वान काउंसल ने सुझाव दिया है कि वे कोई पूर्वप्रभावी राहत नहीं मांग रहे हैं, इसलिए वे देयताओं का भुगतान करेंगे और भावी नई दरों के लिए अनुरोध करेंगे और चूंकि इस प्रकार कोई विवाद नहीं है इसलिए याचिका को खारिज किया जा सकता है। हमारे लिए यह मुद्दा इतना सरल मालुम नहीं होता। आवेदक द्वारा यह प्रकथन किया गया है कि प्रतिवादित दर न तो सरकार द्वारा स्वीकृत की गई थी और न ही राजपत्र में प्रकाशित हुई थी। यदि ऐसा है तो इससे कानूनी अशक्तता उत्पन्न हो सकती है जिससे दर प्रारंभ से ही रद्द हो सकती है अर्थात् कानून की निगाह में विद्यमान नहीं है।

8.1 मुंबई पत्तन न्यास की ओर से एक अन्य निर्णयविधि का संदर्भ दिया गया है—अन्याय वृद्धि के सिद्धांत के आधार पर वापसी भुगतान की मांग को अस्वीकार करने के लिए-कास्टीच्यूशन बैंच 97 वाल्यूम।, सेक्शन 579, आवेदक द्वारा दिए गए एक स्पष्ट बयान ".....वापसी भुगतान के किसी दावे को कोई प्रश्न नहीं उठता," के कारण यहां पुन: ब्यौरों की जांच करने की आवश्यकता नहीं।

8.2 मुंबई पत्तन न्यास के विद्वान कांउसल ने यह बताने के लिए पूरी सावधानी से यह तर्क दिया कि ग्राहक पर अतिरिक्त भार डालने के बारे में कहीं कुछ भी कहे बगैर आवेदक अब ऐसा कहने से प्रतिबाधित हो जाएगा। हम इस बात का निश्चय नहीं कर सकते कि क्या इस स्थिति में इस मुद्दे की जांच करना आवश्यक है। हर हालत में इस स्थिति को ध्यान में रखते हुए कि कोई भुगतान नहीं किए गए हैं और किन्हीं वापसी भुगतानों की मांग नहीं की गई है, संभवत: अब तक इस मुद्दे पर दो पक्षकारों के बीच विचार-विमर्श किए जाने का कोई असर नहीं आया। इसके अतिरिक्त इस मुद्दे की संगतता समाप्त हो सकती है यदि प्रतिवादित मामले की प्रारंभिक वैधता को सफलतापूर्वक चुनौती दी जाए।

9.1 अंतत: हमें याचिका की संधार्यता के संबंध में त्रुटिपूर्ण अभिवचनों से संबंधित प्रारंभिक आपत्तियों के प्रभाव से संबंधित मुद्दे पर कार्यवाही करनी है। मुंबई पत्तन न्यास के विद्वान कांउसल हम पर यह विश्वास कर चुके होंगे कि न तो कोई विवाद शेष है और अनुरोध के अनुसार न कोई राहत दी जा सकती है इसलिए याचिका को प्रारंभ में खारिज कर दिया जाएगा।

9.2 इसके विपरीत आवेदक के विद्वान काउंसल ने यह अनुरोध करने के लिए पत्तन शुल्कों से संबंधित सभी विवादों और मुद्दों को सुचारू रूप से शीघ्र निपटाने के लिए इस प्राधिकरण को उपलब्ध विशेष लचीलेपन का तर्क प्रस्तुत किया है कि इस प्राधिकरण को उदारनीति अपनानी चाहिए और याचनाओं के शब्दों का सूक्ष्म विशलेषण नहीं करना चाहिए। इस मुद्दे पर और जोर देते हुए उन्होंने इस आशय की न्यायालयों (शीर्षस्थ न्यायालय सहित) द्वारा की गई टिप्पणियों का उल्लेख किया कि कोई वास्तविक मामला त्रुटिपूर्ण याचना के आधार पर खारिज नहीं किया जाएगा। उन्हें इस बात का आश्चर्य है कि यदि ऐसा न्यायालयों में किया जा सकता है तो यह इस प्राधिकरण की अदालत में क्यों नहीं किया जा सकता। ऐसी प्रारंभिक आपत्तियों द्वारा पूर्णत: विफल हो रही संविधि के मूल और अत्यधिक हितकारी प्रयोजन और उद्देश्य के बारे में उत्कट तर्क करते हुए उन्होंने आवेदक की याचिका के गुणावगुण पर विचार किए जाने को रोकने के लिए ऐसी प्रारंभिक आपत्तियां उठाकर पत्तन न्यास जो एक सार्वजनिक प्राधिकरण और सार्वजनिक हित का रक्षक है, की मर्यादा पर सवाल उठाया है। उनके मत से संविधि की विचारधारा का बेहतर पालन किया जाएगा, यदि ऐसे आवेदनों का गुणावगुण के आधार पर निपटान किया जाए ताकि एक स्पष्ट, उचित और पारदर्शी प्रशुल्क नियत किया जा सके।

10.1 निष्कर्षत: उपर्युक्त कारणों से मुंबई पत्तन न्यास की ओर से उठाई गई प्रारंभिक आपत्तियों का निम्न प्रकार निर्णय किया जाता है :—

(i) प्राधिकरण में निर्णय करने की प्रक्रिया से संबंधित आपत्ति को खारिज किया जाता है।

(ii) सुनवाई करने की प्रक्रिया से संबंधित आपत्ति को खारिज किया जाता है।

(iii) न्यासी बोर्ड को निदेश देने से संबंधित उद्देश्य का समर्थन किया जाता है।

(iv) प्राधिकरण द्वारा "छूट" प्रदान करने से संबंधित आपत्ति का समर्थन किया जाता है।

(v) "बोर्ड के किसी संकल्प के उल्लंघन" के लिए प्राधिकरण को (गलती से) सिफारिश करने से संबंधित आपत्ति का समर्थन किया जाता है।

10.2 उपर्युक्त निर्णयों से स्वत: यह नहीं मान लिया जाना चाहिए कि प्रारंभ में ही याचिका के परिणामी निरसन के लिए गैर-आवेदक की याचना को स्वीकार कर लिया गया है। हम आवेदक के इस तर्क को स्वीकार करने के लिए प्रवृत्त हैं कि यदि मामला अन्यथा युक्तिसंगत और अनुरक्षणीय है तो किसी याचिका को केवल गलत अभिवचनों के आधार पर खारिज नहीं किया जा सकता। हम इस बात से सहमत हैं कि इस मामले को आगे बढ़ाना बेहतर कार्यवाही होगी जिसके लिए आवेदक द्वारा मामले की विषयवस्तु के अनुरूप अभिवचनों को संशोधित किया जाना अपेक्षित है और गुणावगुण के आधार पर उचित और उपयुक्त निर्णय करना उचित कार्रवाही होगी।

10.3 तदनुसार, अब इस मामले पर अभिवचनों के संशोधन के पश्चात् गुणावगुण के आधार पर विचार करने के लिए आगे कार्यवाही की जाएगी।

[सं. ए.डी.वी.टी./III/IV/143/98]

एस. सत्यम, अध्यक्ष

TARIFF AUTHORITY FOR MAJOR PORTS

NOTIFICATION

New Delhi, the 13th August, 1998

No. TAMP/5/97-MBPT.—In exercise of the powers conferred by Sections 48 and 50 of the Major Port Trusts Act, 1963 (38 of 1963), the Tariff Authority for Major Posts hereby issues an order on the preliminary objections raised by the Mumbai Port Trust (MBPT) in the case relating to the representation made by M/s. Ispat Industries Limited against the MBPT and others about levy of tariff on transhipment operations in respect of their iron ore cargo movements.

SCHEDULE

M/s. Ispat Industries Limited—Applicant

Vs

Mumbai Port Trust (MBPT)—Non Applicant

ORDER

(Passed on this 27th day of July 1998)

This case arises out of an application moved by the Applicant alleging arbitrary levy of charges by the Non-applicant, on the pretext of a notional rendering of services in respect of their barges having innocent passage of MBPT waters without availing any part of the port infrastructure.

2. The case was taken up for a hearing in Delhi on 3 July 1998.

3. Before commencement of the proceedings, the Applicant moved an application praying for amendment of their application modifying in particular prayer (A). The Non-Applicant without admitting the facts stated therein raised no objection for allowing the prayer for an amendment. Accordingly, the prayer was allowed and the application for amendment was taken on record. The Applicant is called upon to file an amended application including the modified relief clause so that the Non-Applicant can file a detailed reply to the amended application before it is adjudicated upon by this Authority.

4. At the hearing, before going into the merits of the case, the MBPT raised some preliminary objections about the manner in which the case was being progressed and about the nature of the prayers of the Applicant. The preliminary objections raised in the written (and, the supplementary verbal) submissions at the hearing were in the main as follows :

(a) The collective body of members alone can take any decision as the Authority.

(b) The whole Authority shall be present at any hearing. It is not open to the Chairman to hold hearings singly.

(c) The Authority does not have the power to direct the Board of Trustees. Only the Government can give such directives.

(d) The prayer for 'exemption' can not be entertained by the Authority since the statute does not empower it to grant exemptions.

(e) The averment about 'violation of Resolution' in Prayer-B ought properly to be addressed to the Board of Trustees and not to the Authority

5. The Applicant filed written submissions on 9 July 98 incorporating their replies to the (preliminary) objections raised on behalf of the MBPT. These have been taken on record and duly taken into account.

6. With this reckoning, we proceed to deal with these objections seriatim as follows .

(a) The collective body of members alone can take any decision as the Authority.

We are not sure whether this objection is at all sustainable. The scheme of things envisioned for the Authority by the Statute incorporates a good deal of discretion exercisable by it. Arguably, therefore, so long as it enures that principles of natural justice are followed before determining any dispute between parties, it can even delegate the power of taking decisions to the Chairman or a Member or Members

Be that as it may, in practice, the system adopted by the Authority is indeed the one advocated by the learned Counsel for the MBPT All decisions are taken by the collective body of members Only authentication of the decisions is done by the Chairman, but this is strictly within the specific stipulate of the Statute.

In the circumstance, there is no need to dwell further on this objection. It is accordingly rejected as irrelevant to this case.

(b) The whole Authority shall be present at any hearing. It is not open to the Chairman to hold hearings singly.

(i) For examining the validity of this objection, it will be necessary, as has been argued by the learned Counsel for the Applicant, to consider the scheme of the Statute in its provisions relating to the Authority

(ii) In this context, the following features stand out as signposts :

(a) As earlier pointed out by us, the scheme of things envisioned for the Authority by the Statute incorporates a good deal of discretion exercisable by it (Sec. 47-E). In conformity with its character as a quasi-judicial body, therefore, it has necessarily to ensure only that principles of natural justice are followed before determining any disputes between parties ; it need not be bound by the rigidities or the rigours of strict judicial processes.

(b) That this Authority is envisaged to be different from a Court is apparent from the provisions of Sec. 47-F which provides that all orders and decisions of the Authority shall be authenticated by the signature of the Chairperson or any other member authorised by the Authority in this behalf. Contrarily, Courts are required to have their judgements and orders signed by all the Judges/Members.

(c) Another striking feature is that two of the three Members of the Authority are part-time Members. It will not be a practical proposition to prescribe their participation in all the proceedings. It is in appreciation of this position that the Authority has authorised the Chairman to complete the processes and bring up the cases for a final collective decision through a joint application of minds to all the material gathered It is relevant to recognise that the Authority has particularly authorised the Chairman to hold the joint hearings, as it is not practicable for part-time

Members to attend to processing of cases at all stages and participate in joint hearings as well. In the event, purposes of the point at issue, the Statute has to be constructed differently, flexibly.

(d) It can be contended that, if this is to be so, then, the constitution of the Authority shall be corrected. But, such a contention will be devoid of substance in the light of the specific provisions in the Statute [Section 47-G(a) and (c)] to cover such (alleged) lacunae.

(iii) The position that emerges from all this is that this Authority, which is expected to function as a bulwark between port trusts/private operators and (their) users, must ensure adequate opportunities for both parties to represent their interests. To enable maximum participation of a maximum number of users, in some cases, it may be necessary even to hold port-level (joint) hearings. So long as the purpose of such hearings is to safeguard adherence to the principles of natural justice, bearing in mind the scheme of the Statute analysed above, their validity cannot be questioned on the ground of any procedure being discordant with the enactment. Significantly, as rightly stressed by the learned Counsel for the Applicant, the absence of any specific provisions to the contrary in the Statute must reinforce such an understanding. In other words the merit of the modalities must survive on the spirit of the set up if not by the strict stipulates of the Statute.

(iv) If this objection were to be accepted, then, the consequence will be either to delay and bunch the joint hearings to suit the convenience of all or, more likely, to call them off altogether. The impact of such a development will be to impair the adherence to the principle of natural justice of ensuring adequate opportunities for both parties to represent their interests

(v) Finally, the weight of accepted practice has duly to be reckoned with. The manner in which this Authority has exercised its powers so far without any objection has to be recognised. The learned Counsel for the MBPT has argued though that one and a half year' existence of the Authority is not a long enough period to draw conclusions in this regard. We find it difficult to agree with his perception. Eighteen months may not be long enough for a practice to evolve as a consuetudinary practice; but, it is surely not insufficient to establish legitimacy of procedures

(vi) In the result, and for the reasons given above, this (preliminary) objection is found to be misconceived and devoid of any merit.

(c) **The Authority does not have the power to direct the Board of Trustees. Only the Government can give such directives.**

At the time of arguments this objection was projected with reference to the amended pleadings. It has been pressed with the further arguments that this Authority is a substitute authority for the Board of Trustees; any such directive, as prayed for, even if issued, will therefore be a directive to the Authority itself ! Such a directive cannot but be untenable. The Authority has to recognise the position that, vis-a-vis the Board of Trustees, it is on a concurrent hierarchy and does not have powers of an appellate character.

There has really been no specific reply to this objection. The Applicant's counter-argument traverses a different trajectory to take the position that this Authority is not a Court or Tribunal and, therefore, rules relating to pleading cannot be applied with strictness ; the mere fact that the language of the prayer is not satisfactory cannot altogether override the fact that the substance of the petition is wholly within the powers and jurisdiction of this Authority.

There can be no quarrel about the legal position on this point. This Authority has no sway over the jurisdiction of the Board of Trustees. The powers and functions of the Board of Trustees are all administrative in nature and this Authority is not concerned with such administrative functions. It is our stated position that this Authority will only be concerned with the quasi-judicial functions that the amended Statute has taken away from the Board of Trustees and vested in it. In our view, this was a deliberate act of the legislature to distinguish between administrative and quasi-judicial powers/functions so as to ensure that there was no violation of the principles of natural justice.

In this backdrop, indisputably, there can be no scope for this Authority to issue any directives to the Board of Trustees In the event, this (preliminary) objection has to be upheld.

(d) **The prayer for 'exemption' can not be entertained by the Authority since the statute does not empower it to grant exemptions.**

Here, again, there has really been no specific reply to the objection. The Applicant has rest content with the averment that the objective of the Act will be completely stultified if such preliminary objections are permitted to be raised.

There can be no quarrel about the legal position on this point too It is our stated position that the power to grant exemption is never exercised by a quasi-judicial authority whose main function is to adjudicate upon rights and contentions of two parties. The power to grant exemption has to be with an administrative Authority who has to use its discretion based on special circumstances of individual cases or classes of cases.

From this point of view, admittedly, there will be no scope for this Authority to order any exemptions No purpose will, therefore, be served by our entertaining any prayer in this regard. That being so, this (preliminary) objection has to be upheld.

(c) The averment about 'Violation of Resolution' in Prayer-B ought properly to be addressed to the Board of Trustees and not to the Authority.

This objection has been pressed with the further argument that there is nothing in the prayer to indicate any grievance about rates; the reference is to non-compliance of a Resolution, by talking about 'violation of Resolution' the Applicant has actually admitted the validity of the Resoultion; how then, is this Authority's jurisdiction attracted; they must go back to the Board of Trustees which is the correct forum to deal with this matter.

Interestingly, yet again, there is no specific response to this objection. The Applicant has rested with the remarks that the pith and substance of the petition shall preponderate over its prayers and pleadings. The substance of the petition being wholly relatable to tariffs, it has been argued, mere defects in the language of the pleadings cannot detract from the merits of its maintainability.

Notwithstanding the eloquence with which the point about pith and substance has been canvassed, the force in the objection cannot be discounted. Any complaint about non-compliance by the port trust authorities of a Resolution has naturally to be addressed to the Board of Trustees. This Authority can do very little to enforce compliance of Resolutions of the Board of Trustees. Consequently, this (preliminary) objection has to be sustained.

7.1 Even after disposing off the specific (preliminary) objections, it remains for us to deal with some incidental issues. One such is about retrospective revision of rates. The learned Counsel for the MBPT has cited various authorities to buttress his contentions :

(i) AIR 1977 SC 552

(ii) Vol. 199 ITR 530

(iii) 1968 SC 1336

(iv) 1988 Vol. 4 SC cases 59

(v) 356 U.S. 309-2 Lawyers' Edition-II 788.

7.2 The upshot of all these citations is as follows :

(i) The issues in reference are 'substantive' and not 'procedural' or 'declaratory'. There can, therefore, be no retrospective annulment of rates

(ii) Any retrospective intervention will cause financial chaos.

(iii) Experts can disagree on calculations. But, how can (expert) opinion be superimposed retrospectively ?

(iv) The Authority will not be able to recreate the conditions of the past to justify such superimposition of (expert) opinions

7.3 There is no need to go into the details of these citations. It is our stated position that the rates already sanctioned will remain valid till they are altered by this Authority. As soon as new rates, etc., are determined and notified, the old rates will yield place to the new ones. Even otherwise, the Applicant has unambiguously admitted that "Ispat is not seeking the grant of any relief with retrsopective effect". That being so, there is no need to dwell further on this issue or to go into the details of the various citations.

7.4 But, there is an interesting offshoot. The learned Counsel for the MBPT has suggested that, since they are not seeking any retrospective relief, they shall pay the dues and ask for new rates prospectively; and, since there is thus no dispute, the petition deserves to be dismissed. to us, this issue does not appear to be all that simple, there is an averment by the applicant that the impugned rate was neither sanctioned by the Government nor notified in the Gazette, if it is so, it may give rise to a legal infirmity which can render the rate void *abinitio* i.e. *nonest* in the eyes of law. Possibly, this is the point that the Applicant proposes to pursue.

8.1 On behfalf of the MBPT another case law has been cited—Constitution Bench 97 Vol I Sec. 579— to condemn any demand for refunds on the basis of the doctrine of unjust enrichment Here, again, it will not be necessary to go into details because of a categorical statement by the Applicant that "no question of any claim for refund at all arises ".

8.2 The learned Counsel for the MBPT has argued further with abundant caution to point out that, not having said anywhere about not passing on the additional burden to the customer, the Applicant will be estopped from saying so now. We are not sure whether it is necessary at this stage to go into this issue. In any case, in view of the position that no payments have been made and no refunds are being sought, there has, perhaps, been no occasion so far for this issue to be discussed between the two parties. Furthermore, this issue may well lose its relevance if the validity *ab imitio* of the impugned rate is successfully challenged.

9.1 Finally, we have to deal with the issue about the impact of the preliminary objections relating to faulty pleadings on the very maintainability of the petition. The learned Counsel for the MBPT would have us believe that, since no dispute remains and no relief as sought for can be given, the petition shall be dismissed at the threshold.

9.2 As against this, the learned Couunsel for the Applicant has extrapolated his logic of special flexibilities available to this Authority to resolve smoothly and expeditiously all disputes and issues relating to port tariffs to urge that this Authority must adopt a liberal approach and not go in for a microscopic analysis of wordings of prayers. Stressing this point further he has referred to observations by judicial courts (including the Apex Court) to the effect that a genuine case shall not be dismissed on the ground of a defective prayer. If this can be so in judicial courts, he wonders, why can it not

be so in the forum of this Authority ! Arguing passionately about the basic and highly salutary purpose and objective of the Statute being completely stultified by such preliminary objections, he has questioned the propriety of a Port Trust, a public authority and a guardian of public interest, raising such preliminary objections to blockade consideration on merits of the Applicant's petion. The spirit and the letter of the Statute will, in his opinion, be better served if such applications are disposed off on merits so that a fair, reasonable, and transparent tariff can be fixed.

10.1 In the result, and for the reasons given above, the preliminary objections raised on behalf of the MBPT are decided as follows :

(i) The objection relating to the decision-making process in the Authority is rejected.

(ii) The objection about the procedure for holding hearings is rejected

(iii) The objective about giving directives to the Board of Trustees is upheld.

(iv) The objection about grant of 'exemption' by the Authority is upheld.

(v) The objection about (wrongly) approaching the Authority for a 'violation of a Board Resolution' is upheld.

10.2 From the decisions given above, it does not automatically follow that the Non-Applicant's prayer for consequential dismissal of the petition at the very threshold has been accepted. We are inclined to accept the Applicant's argument that, if the matter is otherwise tenable and maintainable, a petition shall not be dismissed on the ground only of faulty pleading. We agree, the better course of action will be to proceed with the case, require the Applicant to amend the pleadings in line with the substance of the case, and take an appropriate and reasonable decision on merits.

10.3 Accordingly, the case will now be progressed for consideration on merits after amendment of the pleadings.

[No. ADVT/III/IV/143/98]

S. SATHYAM, Chairman

Printed by the Manager, Govt of India Press, Ring Road, Mayapuri, New Delhi-110064
and Published by the Controller of Publications, Delhi-110054 — 1998.